ISSN : 2277-7865
Price : ₹ 50

तित्थयर

वर्ष : ३९ अंक : ०१ अप्रैल २०१५

|| जैन भवन ||

KUSUM KUSUM KUSUM KUSUM KUSUM KUSUM KUSUM KUSUM KUSUM

KUSUM ®

KUSUM QUALITY PRODUCT

श्रीश्री नेमिनाथाय नमः

''ऐसा विश्वास दिल में जमाते चलो
सिद्ध, अरिहन्त को मन में रमाते चलो,
वक्त आयेगा ऐसा कभी न कभी
सिद्धि पायेंगे हम भी कभी न कभी''।

KUSUM CHANACHUR

Founder : Late Sikhar Chand Churoria

MANUFACTURED BY

K. K. FOOD PRODUCTS

A quality product of
Nakeen, Chanachur, Bhujia, Gathia etc.

Partners
Mr. Anil Kumar
Mr. Sunil Kumar Churoria

P.O.- Azimganj, Dist. Murshidabad
Pin- 742122, West Bengal
Mobile: 09734067986/9434060429
Phone No: 03483-253232, Fax No.: 03483-253566
E-mail ID : kusumchanachur@hotmail.com
azimganjsunil@gmail.com

ISSN 2277 - 7865

तित्थयर

श्रमण संस्कृति मूलक मासिक पत्रिका

वर्ष - ३९ अंक - १ अप्रैल २०१५

लेख, पुस्तक समीक्षा तथा पत्रिका से सम्बन्धित पत्र व्यवहार के लिय
पता - Editor : Titthayar, P-25, Kalakar Street, Kolkata - 700 007
Phone : (033) 2268-2655,
Email : jainbhawan@rediffmail.com
Website : www.jainbhawan.in

विज्ञापन तथा सदस्यता के लिये कृपया सम्पर्क करें --
Secretary, Jain Bhawan, P-25, Kalakar Street, Kolkata - 700 007
Life Membership : India : Rs. 5000.00. Yearly : 500.00
Foreign : $ 500

Published by Dr. Lata Bothra on behalf of Jain Bhawan from P-25, Kalakar Street, Kolkata - 700 007, Phone : 2268-2655 and printed by her at Arunima Printing Works, 81, Simla Street Kolkata - 700 006 Phone : 2241-1006

संपादन

डॉ. लता बोथरा

पी-एच.डी., डी.लिट्

॥ जैन भवन ॥

Editorial Board :

1. Dr. Satyaranjan Banerjee
2. Dr. Sagarmal Jain
3. Dr. Lata Bothra
4. Dr. Jitendra B. Shah
5. Dr. Anupam Jash
6. Dr. Peter Flugel
7. Dr. Rajiv Dugar
8. Smt. Jasmine Dudhoria
9. Smt. Pushpa Boyd

अनुक्रमणिका

क्र. सं.	लेख	लेखक	पृ. सं.
१.	यक्ष-यक्षी-प्रतिमाविज्ञान	डॉ. मारुति नंदन प्रसाद तिवारी	५
२.	स्वभाव-दर्शन का दर्पण-अहिंसा	श्रीमती कल्पना मुकीम	१७
३.	सोने के कंगन	श्री केवल मुनि	३०

ISSN 2277 - 7865

कवरपृष्ठ : जैन मुनियों की मूर्तियाँ हाथ में ओघा लिए हुए
बौद्धों में ओघा का प्रचलन नहीं है।
(Fei lai feng caves China)

Composed by:
Jain Bhawan Computer Centre, P-25, Kalakar Street Kolkata - 700 007

यक्ष-यक्षी-प्रतिमाविज्ञान

डॉ. मारुति नंदन प्रसाद तिवारी

(22) अम्बिका (या कुष्माण्डी) यक्षी[1]

शास्त्रीय परम्परा :-

अम्बिका (या कुष्माण्डी) जिन नेमिनाथ की यक्षी है। दोनों परम्पराओं में सिंहवाहना यक्षी के करों में आम्रलुम्बि एवं बालक के प्रदर्शन का निर्देश है।

श्वेतांबर परम्परा-निर्वाणकलिका में सिंहवाना कुष्माण्डी चतुर्भुजा है और उसके दाहिने हाथों में मातृलिंग एवं पाश और बायें में पुत्र एवं अंकुश हैं।[2] समान लक्षणों का उल्लेख करनेवाले अन्य ग्रन्थों में मातुलिंग के स्थान पर आम्रलुम्बि[3] का उल्लेख है। मन्त्राधिराजकल्प में हाथ में बालक के प्रदर्शन का उल्लेख नहीं है। ग्रन्थ के अनुसार अम्बिका के दोनों पुत्र (सिद्ध और बुद्ध) उसके कटि के समीप निरूपित होंगे।[4] अम्बिका-ताटंक में उल्लेख है कि चतुर्भुजा अम्बिका का एक पुत्र उसको

---

1. विस्तार के लिए द्रष्टव्य, शाह यू. पी., आइकानोग्राफी ऑव दि जैन गाडेस अम्बिका, ज.यू.बां., खं. 9, भाग 2, 1940-41, पृ. 147-69, तिवारी, एम.एन.पी., उत्तर भारत में जैन यक्षी अम्बिका का प्रतिमा निरूपण, संबोधि, खं. 3, अं. 2 3, दिसंबर 1974, पृ. 27-44
2. कूष्माण्डी देवीं कनकवर्णां सिंहवाहनां चतुर्भुजां मातुलिंगपाशयुक्तदक्षिणकरां पुत्रांकुशान्वितवामकरां चेति।। निर्वाणकलिका 18.22, द्रष्टव्य, देवतामूर्तिप्रकरण 7.61। ज्ञातव्य है कि कुछ श्वेतांबर ग्रन्थों (चतुर्विंशतिका–बप्पभट्टिकृत, श्लोक 88, 96) में द्विभुजा अम्बिका का भी ध्यान किया गया है।
3. अम्बादेवी कनककान्तिरुचिः सिंहवाहना चतुर्भुजा आम्रलुम्बिपाशयुक्तदक्षिणकरद्वया पुत्रांकुशासक्तवामकरद्वया च। प्रवचनसारोद्धार 22, पृ. 94; द्रष्टव्य, त्रि.श.पु.च. 8.9.385-86; आचारदिनकर 34, पृ. 177; पद्मानन्दमहाकाव्यःपरिशिष्ट-नेमिनाथ 57-48; रूपमण्डन 6.19-ग्रन्थ में पाश के स्थान पर नागपाश का उल्लेख है।
4. कुष्माण्डिनी.........पाशाम्रलुम्बिसृणिसत्फलमावहन्ती।
पुत्रद्वयं करकटीतटगं च नेमिनाथक्रमाम्बुजयुगं शिवदा नमन्ती।। मन्त्राधिराजकल्प 3.64
द्रष्टव्य, स्तुति चतुर्विंशतिका (शोभनसूरिकृत) 22.4,24.4
हिंहयाना हेमवर्णा हेमवर्णा सिद्धबुद्धसमन्विता।
कम्राम्रलुम्बिभृत्पाणिरत्राम्बा संघविघ्नहृत्।। विविधतीर्थकल्प-उर्ज्यन्त-स्तव।

उंगली पकड़े होगा और दूसरा गोद में स्थित होगा। सिंहवाहिनी अम्बिका फल, आम्रलुम्बि, अंकुश एवं पाश से युक्त है।[1]

दिगंबर परम्परा-प्रतिष्ठासारसंग्रह में सिंहवाहना कुष्माण्डिनी (आम्रादेवी) को द्विभुजा और चतुर्भुजा बताया गया है, पर आयुधों का उल्लेख नहीं है।[2] प्रतिष्ठारोद्धार में द्विभुजा अम्बिका के करों में आम्रलुम्बि (दक्षिण) एवं पुत्र (प्रियंकर) के प्रदर्शन का निर्देश है। दूसरे पुत्र (शुभंकर) के आम्रवृक्ष की छाया में अवस्थित यक्षी के समीप ही निरूपण का उल्लेख है।[3] अपराजितपृच्छा में द्विभुजा अम्बिका के करों में फल एवं वरदमुद्रा का वर्णन है। देवी के समीप ही उसके दोनों पुत्रों के प्रदर्शन का विधान है, जिनमें से एक गोद में बैठा होगा।[4]

दिगंबर परम्परा के एक तान्त्रिक ग्रन्थ में सिंहासन पर विराजमान अम्बिका का चतुर्भुज एवं अष्टभुज रूपों में ध्यान किया गया है। चतुर्भुजा अम्बिका के करों में शंख, चक्र, वरदमुद्रा एवं पाश का[5] तथा अष्टभुजा देवी के करों में शंख, चक्र, धनुष, परशु, तोमर, खड्ग, पाश और कोद्रव का उल्लेख है।[6]

अम्बिका का भयावह स्वरूप–तान्त्रिक ग्रन्थ, अम्बिका-ताटंक, में अम्बिका के भयंकर रूप का स्मरण है और उसे शिवा, शंकरा,

1. शाह, यू.पी., पू.नि., पृ. 160.
2. देवी कृष्माण्डिनी यस्य सिंहगा हरितप्रभा।
   चतुर्हस्तजिनेन्द्रस्य महाभक्तिर्विराजितः।।
   द्विभुजा सिंहभारूढ़ा आम्रादेवी हरित्प्रभा।। प्रतिष्ठासारसंग्रह 5.64,66
3. सव्येकद्युपगाप्रियंकर सुतुक्प्रीत्यै करे विभ्रतीं
   द्विव्याभ्रस्तबकं शुभंकरकाश्लिष्टान्यहस्तांगुलिम्।
   सिंहे भर्तुचरे स्थितां हरितभामाभ्रद्रुमच्छायगां
   वंदारुं दशकार्मुकोच्छ्रयलिनं देवीमिहाभ्रायजे।। प्रतिष्ठासारोद्धार 3.176; द्रष्टव्य, प्रतिष्ठातिलकम् 7.22, पृ. 347
4. हरिद्विर्णा सिंहसंस्था द्विभुजा च फलं वरम्।
   पुत्रेणोपास्यमाना च सुतोत्संगातथाऽम्बिका।। अपराजितपृच्छा 221.36
5. शाह, यू. पी., पू. नि., पृ. 161.......... देवीं चतुर्भुजां शंखचक्रवरद-पाशान्यस्वरूपेण सिंहासनस्थिता।
6. वही, पृ. 161-शाह ने अष्टभुजा अम्बिका के एक चित्र का उल्लेख किया है, जिसमें सिंहवाहना अम्बिका कोद्रव, त्रिशूल, चाप, अभयमुद्रा, श्रृणि, पद्म, शर एवं आम्रलुम्बि से युक्त है।

स्तम्भिनी, मोहिनी, शोषणी, भीमनादा, चण्डिका, चण्डरूपा, अघोरा आदि नामों से सम्बोधित किया गया है। प्रलयंकारी रूप में उसे सम्पूर्ण सृष्टि की संहार करनेवाली कहा गया है। इस रूप में देवी के करों में धनुष, वाण, दण्ड, खड्ग चक्र एवं पद्म आदि के प्रदर्शन का निर्देश है। सिंहवाहिनी देवी के हाथ में आम्र का भी उल्लेख है। यू.पी. शाह ने विमलवसही की देवकुलिका 35 के वितान की विंशतिभुजा देवी की सम्भावित पहचान अम्बिका के भयावह रूप से की है।[1] ललितमुद्रा में विराजमान सिंहवाहना अम्बिका की इस मूर्ति में सुरक्षित दस भुजाओं में खड्ग, शक्ति, सर्प, गदा, खेटक, परशु, कमण्डलु, पद्म, अभयमुद्रा एवं वरदमुद्रा प्रदर्शित हैं।

श्वेतांबर और दिगंबर परम्पराओं में अम्बिका[2] की उत्पत्ति की विस्तृत कथाएं क्रमशः जिनप्रभसूरिकृत **अम्बिका-देवी-कल्प** (1400ई.) और **यक्षी कथा (पुष्पाश्रवकथा** का अंश) में वर्णित हैं। श्वेतांबर परम्परा में अम्बिका के पुत्रों के नाम सिद्ध और बुद्ध तथा दिगंबर परम्परा में शुभंकर और प्रभंकर हैं।[3] श्वेतांबर कथा के अनुसार अम्बिका पूर्वजन्म में सोम नाम के ब्राह्मण की भार्या थी जो किसी कल्पित अपराध पर सोम द्वारा निष्कासित किये जाने पर अपने दोनों पुत्रों के साथ घर से निकल पड़ी। अम्बिका और उसके दोनों पुत्रों को भूख-प्यास से व्याकुल जानकर मार्ग का एक सूखा आम्रवृक्ष फलों से लद गया और सूखा कुँआ जल से भर गया। अम्बिका ने आम्रफल खाकर जल ग्रहण किया और उसी वृक्ष के नीचे विश्राम किया। कुछ समय पश्चात् सोम अपनी भूल पर पश्चाताप करता हुआ अम्बिका को ढूंढ़ने निकला। जब अम्बिका ने सोम को अपनी ओर आते देखा तो अन्यथा समझकर भयवश दोनों पुत्रों के साथ कुएँ में कूद कर आत्म हत्या कर ली। अगले जन्म में यही अम्बिका नेमिनाथ की शासनदेवी हुई और उसके पूर्वजन्म के दोनों पुत्र इस जन्म में भी पुत्रों के रूप में उससे सम्बद्ध रहे। सोम उसका वाहन (सिंह) हुआ। अम्बिका की भुजा में आम्रलुम्बि एवं शीर्षभाग के ऊपर

1. वही, पृ. 161-62
2. पूर्वजन्म में अम्बिका के नाम अम्बिणी (श्वेताम्बर) और अग्निला (दिगंबर) थे।
3. शाह, यू.पी., पू.नि., पृ. 147-48

आम्रशाखाओं के प्रदर्शन भी पूर्वजन्म की कथा से सम्बद्ध हैं। देवी के हाथ का पाश उस रज्जु का सूचक है जिसकी सहायता से अम्बिका ने कुएं से जल निकाला था।[1] इस प्रकार अम्बिका मूर्ति की प्रमुख लाक्षणिक विशेषताओं को उसके पूर्वजन्म की कथा से सम्बद्ध माना गया है।

अम्बिका या कुष्माण्डिनी पर हिन्दू दुर्गा या अम्बा का प्रभाव स्वीकार किया गया है।[2] पर वास्तव में तांत्रिक ग्रन्थ[3] के अतिरिक्त अन्य ग्रन्थों में वर्णित अम्बिका के प्रतिमा-लक्षण हिन्दू दुर्गा से अप्रभावित और भिन्न हैं। हिन्दू प्रभाव केवल जैन यक्षी के नामों एवं सिंहवाहन के प्रदर्शन में ही स्वीकार किया जा सकता है।

दक्षिण भारतीय परम्परा– दक्षिण भारतीय ग्रन्थों में सिंहवाहना कुष्माण्डिनी का धर्मदेवी नाम से भी उल्लेख है। दिगंबर ग्रन्थ में चतुर्भुजा यक्षी के ऊपरी हाथों में खड्ग एवं चक्र का तथा निचले हाथों से गोद में बैठे बालकों को सहारा देने का उल्लेख है। अज्ञातनाम श्वेतांबर ग्रन्थ में द्विभुजा यक्षी के करों में फल एवं वरदमुद्रा वर्णित है। यक्ष-यक्षी-लक्षण में चतुर्भुजा धर्मदेवी की गोद में उसके दोनों पुत्र अवस्थित हैं तथा देवी दो हाथों से पुत्रों को सहारा दे रही हैं, तीसरे में आम्रलुम्बि लिये है और उसका चौथा हाथ सिंह की ओर मुड़ा है।[4] स्पष्ट है कि दक्षिण भारतीय परम्परा में अम्बिका के साथ आम्रलुम्बि का प्रदर्शन नियमित नहीं था। अम्बिका की गोद में एक के स्थान पर दोनों पुत्रों के चित्रण की परम्परा लोकप्रिय थी।

मूर्ति-परम्परा : उत्तर भारत में जैन यक्षियों में अम्बिका की ही सर्वाधिक स्वतन्त्र और जिन-संयुक्त मूर्तियां मिली हैं। ल. छठी शती ई. में

1. वही, पृ. 148। दिगंबर परम्परा में यही कथा कुछ नवीन नामों एवं परिवर्तनों के साथ वर्णित है।
2. बनर्जी, जे. एन., पू.नि., पृ. 562। हिन्दू दुर्गा को अम्बिका और कुष्माण्डी (या कुष्माण्डा) नामों से भी सम्बोधित किया गया है।
3. तान्त्रिक ग्रन्थ में जैन अम्बिका का शिवा, शंकरा, चण्डिका, अघोरा आदि नामों से सम्बोधन एवं करों में शंख और चक्र के प्रदर्शन का निर्देश हिन्दू अम्बा या दुर्गा के प्रभाव का समर्थन करता है। हिन्दू दुर्गा का वाहन कभी महिष और कभी सिंह बताया गया है और उसके करों में अभयमुद्रा, चक्र, कटक एवं शंख प्रदर्शित हैं। द्रष्टव्य, राव, टी.ए.गोपीनाथ, पू. नि. 341-42.
4. रामचन्द्रन, टी. एन., पू.नि., पृ. 209

अम्बिका को शिल्प में अभिव्यक्ति मिली।[1] नवीं शती ई. तक सभी क्षेत्रों में अधिकांश जिनों के साथ यक्षी के रूप में अम्बिका ही आमूर्तित है। गुजरात एवं राजस्थान के श्वेतांबर स्थलों पर तो दसवीं शती ई. के बाद भी सभी जिनों के साथ सामान्यतः अम्बिका ही निरूपित है। केवल कुछ ही उदाहरणों में ऋषभ एवं पार्श्व के साथ पारम्परिक यक्षी का निरूपण हुआ है। स्वतंत्र एवं जिन संयुक्त मूर्तियों में अम्बिका अधिकांशतः द्विभुजा है।[2] के साथ सिंहवाहन[3] एवं दो हाथों में आम्रलुम्बि[4] (दक्षिण) और बालक (वाम) का प्रदर्शन लोकप्रिय था।[5] अम्बिका अधिकांशतः ललितमुद्रा में विराजमान है और उसके शीर्षभाग में लघु जिन आकृति (नेमि) एवं आम्रफल के गुच्छक उत्कीर्ण हैं। अम्बिका के दूसरे पुत्र को भी समीप ही उत्कीर्ण किया गया जिसके एक हाथ में फल (या आम्रफल) है और दूसरा माता के हाथ की *आम्रलुम्बि को लेने के लिए ऊपर उठा होता है।*

गुजरात-राजस्थान– इस क्षेत्र में छठी से दसवीं शती ई. के मध्य की सभी जिन मूर्तियों में यक्षी के रूप में अम्बिका ही निरूपित है। अम्बिका की जिन संयुक्त एवं स्वतंत्र मूर्तियों के प्रारम्भिकतम (छठी-सातवीं शती ई.) उदाहरण इसी क्षेत्र में अकोटा (गुजरात) से मिले हैं।[6] अकोटा की एक स्वतंत्र मूर्ति में सिंहवाहना अम्बिका द्विभुजा और आम्रलुम्बि एवं फल से युक्त है।[7] एक बालक उसकी बायीं गोद में बैठा है और दूसरा दक्षिण पार्श्व में (निर्वस्त्र) खड़ा है। अम्बिका के शीर्षभाग में नेमिनाथ के स्थान पर पार्श्वनाथ की मूर्ति उत्कीर्ण है। तात्पर्य यह है

1. शाह, यू.पी., अकोटा ब्रोन्जेज्र, पृ. 28-31
2. खजुराहो, देवगढ़, राज्य संग्रहालय, लखनऊ, विमलवसही, कुम्भारिया और लूणवसही से अम्बिका की चतुर्भुज मूर्तियां (10वीं-13वीं शती ई.) भी मिली हैं।
3. दिगंबर स्थलों पर सिंहवाहन का चित्रण नियमित नहीं था।
4. विमलवसही, कुम्भारिया (शान्तिनाथ एवं महावीर मन्दिरों की देवकुलिकाओं) एवं कुछ अन्य स्थलों की मूर्तियों में कभी-कभी आम्रलुम्बि के स्थान पर फल (या अभय-या-वरद-मुद्रा) भी प्रदर्शित है।
5. यू.पी. शाह ने ऐसी दो मूर्तियों का उल्लेख किया है, जिनमें बालक के स्थान पर अम्बिका के हाथ में फल प्रदर्शित है। द्रष्टव्य, शाह, यू.पी., आइकानोग्राफी ऑव दि जैन गाडेस अम्बिका, ज.यू.वां., खं. 9, 1940-41, पृ. 155, चित्र 9 और 10.
6. शाह, यू.पी., अकोटा ब्रोन्जेज, पृ. 28-29, 36-37
7. वही, पृ. 30-31, फलक 14

कि छठी-सातवीं शती ई. तक अम्बिका को नेमि से नहीं सम्बद्ध किया गया था।[1] आम्रलुम्बि एवं बालक से युक्त सिंहवाहना अम्बिका की एक द्विभुजा मूर्ति ओसिया के महावीर मंदिर (लगभग 9वीं शती ई.) के गूढ़ मण्डप के प्रवेश द्वार पर अंकित है। इस क्षेत्र में अम्बिका के साथ सिंहवाहन एवं शीर्षभाग में आम्रफल के गुच्छकों का नियमित चित्रण नवीं शती ई. के बाद प्रारम्भ हुआ। धांक (काठियावाड़) की सातवीं-आठवीं शती ई. की द्विभुजा मूर्ति में दोनों विशेषताएं अनुपस्थित हैं।[2] आठवीं से दसवीं शती ई. के मध्य की छह मूर्तियां अकोटा से मिली हैं। इनमें सिंहवाना अम्बिका द्विभुजा और आम्रलुम्बि एवं बालक से युक्त है।[3] दूसरे पुत्र का नियमित चित्रण नवीं शती ई. में प्रारम्भ हुआ।[4] ज्ञातव्य है कि जिन-संयुक्त मूर्तियों में दूसरे पुत्र का चित्रण सामान्यतः नहीं हुआ है। कुम्भारिया के शान्तिनाथ मन्दिर के शिखर की एक द्विभुजी मूर्ति में अम्बिका के दाहिने हाथ में आम्रलुम्बि के साथ ही खड्ग भी प्रदर्शित है तथा बायां हाथ पुत्र के ऊपर स्थित है।

ग्यारहवीं शती ई. में अम्बिका की चतुर्भुज मूर्तियां भी उत्कीर्ण हुईं। ग्यारहवीं-बारहवीं शती ई. की चतुर्भुज मूर्तियां कुम्भारिया, विमलवसही, जालोर एवं तारंगा से मिली हैं। आयुधों के आधार पर चतुर्भुजा अम्बिका की मूर्तियों को दो वर्गों में बांटा जा सकता है। पहले वर्ग में ऐसी मूर्तियां हैं जिनमें देवी के तीन हाथों में आम्रलुम्बि और चौथे में पुत्र हैं। श्वेतांबर ग्रन्थों के निर्देशों के विरुद्ध अम्बिका के तीन हाथों में आम्रलुम्बि का प्रदर्शन सम्भवतः यक्षी के द्विभुज स्वरूप से प्रभावित है।[5] दूसरे वर्ग की मूर्तियों में अम्बिका

---

1. बप्पभट्टिसूरि की चतुर्विंशतिका (743-838 ई.) में अम्बिका का ध्यान नेमि और महावीर दोनों ही के साथ किया गया है।
2. संकलिया, एच. डी. दि अर्लिएस्ट जैन स्कल्पचर्स इन काठियावाड़, ज.रा.ए.सो., जुलाई 1938 पृ.-427-28
3. शाह, यू.पी., अकोटा ब्रोन्जेज, चित्र 48 बी., 50 सी, 50 ए। समान विवरणों वाली मूर्तियां (9वीं-12वीं शती ई.) कोटा, घाणेराव, नाड़लाई, ओसिया, कुम्भारिया एवं आबू (विमलवसही एवं लूणवसही) से मिली हैं।
4. दिगंबर स्थलों पर दूसरा पुत्र सामान्यतः दाहिने पार्श्व में और श्वेताम्बर स्थलों पर वाम पार्श्व में उत्कीर्ण है। ओसिया की जैन देवकुलिकाओं की दो मूर्तियों में दूसरा पुत्र नहीं उत्कीर्ण है।
5. श्वेताम्बर ग्रन्थों में चतुर्भुजा यक्षी के करों में आम्रलुम्बि, पाश, अंकुश एवं पुत्र के प्रदर्शन का निर्देश है।

आम्रलुम्बि, पाश, चक्र (या वरदमुद्रा) एवं पुत्र से युक्त है। कुम्भारिया के शान्तिनाथ मन्दिर की देवकुलिका 11 (1081 ई.) एवं 12 की दो जिन मूर्तियों में सिंहवाहना अम्बिका चतुर्भुजा है और उसके तीन करों में आम्रलुम्बि एवं चौथे में बालक हैं।[1] कुम्भारिया के नेमिनाथ मन्दिर (देवकुलिका 5) एवं विमलवसही के गूढ़मण्डल की रथिकाओं की जिन मूर्तियों (12वीं शती ई.) में भी समान लक्षणोंवाली चतुर्भुजा अम्बिका निरूपित है। ऐसी ही चतुर्भुजा अम्बिका की एक स्वतंत्र मूर्ति विमलवसही के रंगमण्डप के दक्षिणी-पश्चिमी वितान पर है जिसमें शीर्षभाग में आम्रफल के गुच्छक और पार्श्व में दूसरा पुत्र भी उत्कीर्ण है।

चतुर्भुजा अम्बिका की दूसरे वर्ग की तीन मूर्तियां (12वीं शती ई.) क्रमशः तारंगा, जालोर एवं विमलवसही से मिली हैं। तारंगा के अजितनाथ मन्दिर की मूर्ति मूलप्रासाद की उत्तरी भित्ति पर उत्कीर्ण है। त्रिभंग में खड़ी अम्बिका के वाम पार्श्व में सिंह तथा करों में वरदमुद्रा, आम्रलुम्बि, पाश एवं पुत्र प्रदर्शित हैं। जालोर की मूर्ति महावीर मन्दिर के उत्तरी अधिष्ठान पर है। सिंहवाहना अम्बिका आम्रलुम्बि, चक्र, चक्र एवं पुत्र से युक्त है।[2] विमलवसही के गूढ़मण्डप के दक्षिणी प्रवेश-द्वार पर उत्कीर्ण तीसरी मूर्ति में सिंहवाहना अम्बिका के हाथों में आम्रलुम्बि, चक्र एवं पुत्र हैं।

उत्तरप्रदेश-मध्यप्रदेश– इस क्षेत्र में ल. सातवीं-आठवीं शती ई. में अम्बिका की जिन-संयुक्त और नवीं शती ई. में स्वतंत्र मूर्तियों का उत्कीर्णन आरम्भ हुआ। सम्पूर्ण मूर्तियों के अध्ययन से ज्ञात होता है कि अम्बिका के साथ पुत्र का अंकन सर्वप्रथम इसी क्षेत्र में प्रारम्भ हुआ। पुत्र का अंकन सातवीं-आठवीं शती ई. में और आम्रलुम्बि एवं सिंहवाहन का नवीं-दसवीं शती ई. में प्रारम्भ हुआ।

(क) स्वतन्त्र मूर्तियां– अम्बिका की प्रारम्भिकतम स्वतन्त्र मूर्ति देवगढ़ (मन्दिर 12, 862 ई.) के यक्षी समूह में है। अरिष्टनेमि के साथ

---

1. ज्ञातव्य है कि इस क्षेत्र की जिन-संयुक्त मूर्तियों में सिंहवाहना अम्बिका सामान्यतः द्विभुजा और आम्रलुम्बि एवं पुत्र से युक्त है।
2. अम्बिका के साथ चक्र का प्रदर्शन तान्त्रिक ग्रन्थ से निर्देशित है।

'**अम्बायिका**' नाम की चतुर्भुजा यक्षी आमूर्तित है जो हाथों में पुष्प (या फल), चामर, पद्म एवं पुत्र लिये है।[1] वाहन अनुपस्थित है। अम्बिका के चतुर्भुजा होने के बाद भी पुत्र के अतिरिक्त इस मूर्ति में अन्य कोई पारम्परिक विशेषता नहीं प्रदर्शित है। पर देवगढ़ के मन्दिर 12 के गर्भगृह की नवीं-दसवीं शती ई. की द्विभुज अम्बिका मूर्तियों में सिंहवाहन एवं करों में आम्रलुम्बि एवं पुत्र प्रदर्शित हैं।

किसी अज्ञात स्थल से प्राप्त ल. नवीं शती ई. की एक द्विभुज मूर्ति पुरातत्त्व, संग्रहालय, मथुरा में सुरक्षित है। इस मूर्ति की दुर्लभ विशेषता, परिकर में गणेश कुबेर, बलराम, कृष्ण एवं अष्टमातृकाओं का उत्कीर्णन है। अम्बिका पद्मासन पर ललितमुद्रा में विराजमान है और उसका सिंहवाहन आसन के नीचे अंकित है। यक्षी के दाहिने हाथ में अभयमुद्रा और बायें में पुत्र है। दाहिने पार्श्व में अम्बिका का दूसरा पुत्र भी उपस्थित है। पीठिका पर एक पंक्ति में आठ स्त्री आकृतियां (अष्ट-मातृकाएं)[2] बनी है। ललितमुद्रा में आसीन इन आकृतियों में से अधिकांश नमस्कार-मुद्रा में हैं और कुछ के हांथों में फल एवं अन्य सामग्रियां हैं। अम्बिका के शीर्षभाग की जिन आकृति के पार्श्वों में विभंग में खड़ी बलराम एवं कृष्ण की चतुर्भुज मूर्तियां उत्कीर्ण हैं। स्मरणीय है कि बलराम और कृष्ण नेमिनाथ के चचेरे भाई हैं और अम्बिका नेमिनाथ की यक्षी है। यह मूर्ति इस बात का प्रमाण है कि ल. नवीं शती ई. में अम्बिका नेमिनाथ से सम्बद्ध हुई। तीन सर्पफणों के छत्र से युक्त बलराम के तीन हाथों में पात्र, मुसल और हल (पताका सहित) हैं तथा चौथा हाथ जानु पर स्थित है। कृष्ण के करों में अभयमुद्रा, गदा, चक्र एवं शंख हैं। भामण्डल से युक्त अम्बिका के शीर्षभाग में आम्रफल के गुच्छक एवं उड्डीयमान मालाधर आमूर्तित हैं। देवी के दाहिने पार्श्व में ललितमुद्रा में विराजमान गजमुख गणेश की

---

1. जि.ई.दे., पृ. 102
2. जैन ग्रन्थों में अष्ट-मातृकाओं के उल्लेख प्राप्त होते हैं। अष्ट-मातृकाओं की सूची में ब्रह्माणी, माहेश्वरी, कौमारी, वैष्णवी, वाराही, इन्द्राणी, चामुण्डा और त्रिपुरा के नाम हैं। द्रष्टव्य, शाह, यू.पी. आइकानोग्राफी ऑव चक्रेश्वरी दि यक्षी ऑव ऋषभनाथ, ज.ओ.इं., खं. 20, अं. 3, पृ. 286

द्विभुज मूर्ति उत्कीर्ण है जिसके हाथों में अभयमुद्रा एवं मोदकपात्र हैं। वाम पार्श्व में ललितमुद्रा में आसीन द्विभुज कुबेर की मूर्ति है जिसके हाथों में फल एवं धन का थैला हैं।

दसवीं शती ई. की दो द्विभुज मूर्तियां मालादेवी मन्दिर (ग्यारसपुर, म. प्र.) के उत्तरी और दक्षिणी शिखर पर हैं। शीर्षभाग में आम्रफल के गुच्छकों से शोभित सिंहवाहना अम्बिका आम्रलुम्बि एवं पुत्र से युक्त है। खजुराहो के पार्श्वनाथ मन्दिर (10वीं शती ई.) के दक्षिणी मण्डोवर पर भी अम्बिका की एक द्विभुजा मूर्ति है। त्रिभंग में खड़ी अम्बिका आम्रलुम्बि एवं बालक से युक्त है। यहाँ सिंहवाहन नहीं उत्कीर्ण है। शीर्षभाग में आम्रफल के गुच्छक और दाहिने पार्श्व में दूसरा पुत्र उत्कीर्ण है। इस मूर्ति के अतिरिक्त खजुराहो की दसवीं से बारहवीं शती ई. के मध्य की अन्य सभी मूर्तियों में अम्बिका चतुर्भुजा है।[1] उल्लेखनीय है कि खजुराहो में अम्बिका जहाँ एक ही उदाहरण में द्विभुजा है, वहीं देवगढ़ की 50 से अधिक मूर्तियों (9वीं-12वीं शती ई.) में वह द्विभुजा अंकित है। देवगढ़ से चतुर्भुजा अम्बिका की केवल तीन ही मूर्तियां मिली हैं।[2] तात्पर्य यह कि खजुराहो में अम्बिका का चतुर्भुज और देवगढ़ में द्विभुज रूपों में निरूपण लोकप्रिय था। स्मरणीय है कि दिगंबर परम्परा में अम्बिका को द्विभुज बताया गया है।[3]

देवगढ़ से प्राप्त 50 से अधिक स्वतन्त्र मूर्तियों (9वीं-12वीं शती ई.)[4] में से तीन उदाहरणों के अतिरिक्त अन्य सभी में अम्बिका द्विभुजा है। अधिकांश उदाहरणों में देवी स्थानक-मुद्रा में और कुछ में ललितमुद्रा में निरूपित है। शीर्षभाग में लघु जिन आकृति एवं आम्रवृक्ष उत्कीर्ण हैं। अम्बिका के करों में आम्रलुम्बि[5] एवं पुत्र प्रदर्शित हैं। कुछ उदाहरणों

---

1. पार्श्वनाथ मन्दिर के शिखर (दक्षिण) पर भी चतुर्भुजा अम्बिका की एक मूर्ति है।
2. इसमें मन्दिर 12 की चतुर्भुज मूर्ति भी सम्मिलित है।
3. केवल तान्त्रिक ग्रन्थ में अम्बिका चतुर्भुजा है।
4. सर्वाधिक मूर्तियां ग्यारहवीं शती ई. की हैं।
5. साहू जैन संग्रहालय, देवगढ़ की एक मूर्ति (11वीं शती ई.) में यक्षी की दाहिनी भुजा में आम्रलुम्बि के स्थान पर छत्र-पद्म प्रदर्शित है। मन्दिर 12 की उत्तरी चहारदीवारी की मूर्ति में भी आम्रलुम्बि नहीं प्रदर्शित है।

में पुत्र गोद में न होकर वाम पार्श्व में खड़ा है। सिंहवाहन सभी उदाहरणों में उत्कीर्ण है। दिगंबर परम्परा के अनुरूप दूसरे पुत्र को दाहिने पार्श्व में अंकित किया गया है।[1] साहू जैन संग्रहालय, देवगढ़ की एक मूर्ति (12वीं शती ई.) में अम्बिका के वाहन का सिर सिंह का और शरीर मानव का है। इसी संग्रहालय की एक अन्य मूर्ति (11वीं शती ई.) में यक्षी के वाम स्कन्ध के ऊपर पांच सर्पफणों से मण्डित सुपार्श्व की खड्गासन मूर्ति बनी है। संग्रहालय की एक अन्य मूर्ति में परिकर में अभयमुद्रा, पद्म, चामर एवं कलश से युक्त दो चतुर्भुज देवियों, पांच जिनों एवं चामरधरों की मूर्तियां उत्कीर्ण हैं। वाम पार्श्व में दूसरा पुत्र है। मंदिर 12 की उत्तरी चहारदीवारी की एक मूर्ति (11वीं शती ई.) में अम्बिका के दाहिने हाथ में आम्रलुम्बि नहीं है वरन् वह पुत्र के मस्तक पर स्थित है। उपर्युक्त मूर्तियों के अध्ययन से स्पष्ट है कि देवगढ़ में द्विभुजा अम्बिका के निरूपण में दिगंबर परम्परा का पालन किया गया है।

देवगढ़ के मन्दिर 11 के सामने के मानस्तम्भ (1059 ई.) पर चतुर्भुजा अम्बिका की एक मूर्ति है। सिंहवाहना अम्बिका के करों में आम्रलुम्बि, अंकुश, पाश एवं पुत्र हैं।[2] समान विवरणों वाली दूसरी चतुर्भुज मूर्ति मन्दिर 16 के स्तम्भ (12वीं शती ई.) पर उत्कीर्ण है जिसमें वाहन नहीं है और ऊर्ध्व दक्षिण हाथ का आयुध भी अस्पष्ट है। ज्ञातव्य है कि अम्बिका का चतुर्भुज स्वरूप में निरूपण दिगंबर परम्परा के विरुद्ध है। उपर्युक्त मूर्तियों में अम्बिका के करों में आम्रलुम्बि एवं पुत्र के साथ ही पाश और अंकुश का प्रदर्शन स्पष्टतः श्वेताम्बर परम्परा से प्रभावित है। देवगढ़ के अतिरिक्त खजुराहो एवं राज्य संग्रहालय, लखनऊ की दो अन्य दिगंबर परम्परा की चतुर्भुज मूर्तियों (11वीं 12वीं शती ई.) में भी यह श्वेताम्बर प्रभाव देखा जा सकता है। खजुराहो के मंदिर 27 के एक स्थान की मूर्ति (11वीं शती ई.) में सिंहवाहना अम्बिका के शीर्षभाग में आम्रफल के गुच्छक एवं जिन आकृति उत्कीर्ण

1. मानस्तम्भों की कुछ मूर्तियों में अम्बिका का दूसरा पुत्र नहीं उत्कीर्ण है।
2. पुत्र के बायें हाथ में आम्रफल है।

हैं। अम्बिका के करों में आम्रलुम्बि, अंकुश, पाश, एवं पुत्र दृष्टिगत होते हैं।[1] चामरधर सेवकों एवं उपासकों से वेष्टित अम्बिका के दाहिने पार्श्व में दूसरा पुत्र भी आमूर्तित है। समान विवरणों वाली राज्य संग्रहालय, लखनऊ की एक मूर्ति में सिंहवाहना अम्बिका के एक हाथ में अंकुश के स्थान पर त्रिशूलयुक्त-घण्टा है। ललितमुद्रा में विराजमान यक्षी के समीप ही उसका दूसरा पुत्र भी खड़ा है। इस मूर्ति में भयानक दर्शन वाली अम्बिका के नेत्र बाहर की ओर निकले हैं। भयावह रूप में यह निरूपण सम्भवतः तान्त्रिक परम्परा से प्रभावित है।

राज्य संग्रहालय, लखनऊ की ललितमुद्रा में आसीन एक अन्य चतुर्भुज मूर्ति (11वीं शती ई.) में अम्बिका के निचले हाथों में आम्रलुम्बि एवं पुत्र और ऊपरी हाथों में पद्म-पुस्तक एवं दर्पण हैं। सिंहवाहना अम्बिका के वाम पार्श्व में दूसरा पुत्र एवं शीर्षभाग में जिन आकृति एवं आम्रफल के गुच्छक उत्कीर्ण हैं। जैन परम्परा के विपरीत अम्बिका के साथ पद्म और दर्पण का चित्रण हिन्दू अम्बिका (पार्वती) का प्रभाव हो सकता है। ज्ञातव्य है कि पद्म का चित्रण खजुराहो की चतुर्भुज अम्बिका की मूर्तियों में विशेष लोकप्रिय था।

देवगढ़ के समान खजुराहो में भी जैन यक्षियों में अम्बिका की ही सर्वाधिक मूर्तियां हैं। खजुराहो में दसवीं से बारहवीं शती ई. के मध्य की अम्बिका की 11 मूर्तियां हैं।[2] पार्श्वनाथ मन्दिर के एक उदाहरण के अतिरिक्त अन्य सभी में अम्बिका चतुर्भुजा है। 11 स्वतन्त्र मूर्तियों के अतिरिक्त 7 उत्तरंगों पर भी चतुर्भुजा अम्बिका की ललितमुद्रा में आसीन मूर्तियां उत्कीर्ण हैं। 11 स्वतंत्र मूर्तियों में से दो पार्श्वनाथ और दो आदिनाथ मन्दिरों पर बनी हैं। अन्य उदाहरण स्थानीय संग्रहालयों एवं मन्दिरों में सुरक्षित हैं। सात उदाहरणों में अम्बिका त्रिभंग में खड़ी और शेष में ललितमुद्रा में आसीन है। सभी उदाहरणों में शीर्षभाग में

---

1. खजुराहो की अन्य चतुर्भुज मूर्तियों में दो ऊर्ध्व करों में अंकुश एवं पाश के स्थान पर पद्म (या पद्म में लिपटी पुस्तिका) प्रदर्शित हैं।
2. उत्तर भारत में अम्बिका की सर्वाधिक चतुर्भुज मूर्तियां खजुराहो से मिली हैं।

आम्रफल के गुच्छक, लघु जिन मूर्ति एवं सिंहवाहन उत्कीर्ण हैं। अम्बिका के निचले दो हाथों में आम्रलुम्बि एवं बालक[1] और ऊपरी हाथों में पद्म (या पद्म में लिपटी पुस्तिका) प्रदर्शित हैं।[2व] केवल मन्दिर 27 की एक मूर्ति में ऊर्ध्व करों में अंकुश एवं पाश हैं। इस अध्ययन से स्पष्ट है कि मुख्य आयुधों (आम्रलुम्बि एवं पुत्र) के सन्दर्भ में खजुराहों के कलाकारों ने परम्परा का पालन किया, पर ऊर्ध्व करों में पद्म या पद्म-पुस्तिका का प्रदर्शन खजुराहों की अम्बिका मूर्तियों की स्थानीय विशेषता है। ग्यारहवीं शती ई. की चार मूर्तियों में दाहिने पार्श्व में दूसरा पुत्र भी उत्कीर्ण हैं। स्वतंत्र मूर्तियों में अम्बिका सामान्यतः दो पार्श्ववर्ती सेविकाओं से सेवित है जिनकी एक भुजा में चामर या पद्म प्रदर्शित है। साथ ही अभयमुद्रा एवं जलपात्र से युक्त दो पुरुष या स्त्री आकृतियां भी अंकित हैं। परिकर में सामान्यतः उपासकों, गन्धर्वों एवं उड्डीयमान मालाधरों की आकृतियां बनी हैं। पुरातात्विक संग्रहालय, खजुराहो (1608) की एक विशिष्ट अम्बिका मूर्ति (11वीं शती ई.) में जिन मूर्तियों के समान ही पीठिका छोरों पर द्विभुज यक्ष और यक्षी भी आमूर्तित हैं। यक्ष अभयमुद्रा एवं धन के थैले और यक्षी अभयमुद्रा एवं जलपात्र से युक्त हैं। शीर्षभाग में पद्म धारण करने वाली कुछ देवियां भी बनी हैं।

(क्रमशः)

---

1. दो उदाहरणों (पुरातात्विक संग्रहालय, खजुराहो 1608 एवं मंदिर 27) में पुत्र गोद में बैठा न होकर वाम पार्श्व में खड़ा है।
2. स्थानीय संग्रहालय की एक मूर्ति में अम्बिका की एक ऊपरी भुजा में पद्म के स्थान पर आम्रलुम्बि है और जैन धर्मशाला के प्रवेशद्वार के समीप के दो उत्तरंगों (11वीं शती ई.) की मूर्तियों में पुस्तक प्रदर्शित है।

स्वभाव-दर्शन का दर्पण–अहिंसा

श्रीमती कल्पना मुकीम

भगवान महावीर स्वामीजी द्वारा प्रतिपादित तीन सिद्धान्त अहिंसा, अनेकान्त व अपरिग्रह[1] उन्हीं के द्वारा प्ररूपित धर्म को ठोस धरातल प्रदान करते हुए 'जैन धर्म' के भव्य महल का दिग्दर्शन कराते हैं। इसी मन्तव्य को और भी अधिक स्पष्ट करते हुए मुनि श्री प्रमाण सागरजी महाराज कहते है-

स्यादवादो वर्त्तते यस्मिन पक्षपातो न विद्यते।
नास्त्यन्यपीडनं किंचिद् जैन धर्मः स उच्यते।।[2]

अर्थात् जिसमें स्याद् का सिद्धान्त है किसी प्रकार का पक्षपात नहीं है, किसी को पीड़ा न हो, ऐसा सिद्धान्त जिसमें है, उसे जैन धर्म कहते है। अनेकांत, स्यादवाद, अहिंसा और अपरिग्रह ये जैन दर्शन के चार आधार स्तंभ है विचार में अनेकांत, वाणी में स्यात्, आचरण में अहिंसा और जीवन में अपरिग्रह ये जैन दर्शन के आध्यात्मिक चौखटे के चार कोण हैं।

प्रथम सिद्धान्त अहिंसा भारतीय संस्कृति का प्राण तत्त्व होने के साथ-साथ इस ग्रन्थ के प्रतिपादन का मुख्य विषय भी है। अतएव अहिंसा के स्वरूप की झलक प्रस्तुत करने वाले कुछ विधान यहाँ दिये जा रहे है यथा– **'मित्ती में सव्व भुएसु'**[3] अर्थात् सब प्राणियों पर मेरा मैंत्री भाव है। **'आत्मवत् सर्वभूतानि य पश्यति स पश्यति**[4] अर्थात् सब प्राणियों के प्राणों को अपने प्राणों जैसा मानना। श्री पृथ्वीराज जैन श्रति का कथनं करते है।– **'मा हिस्यात सर्व-भूतानि'** किसी भी प्राणी का हनन नहीं करना चाहिए।[5] आचार्य महाप्रज्ञजी के अनुसार उपनिषद का एक वाक्य है– **'सर्व दिशा मम मित्राणी**–सब दिशाएँ मेरी मित्र बने।'[6]

---

1. अंतिम महागाथा- आदर्श ऋषि प्रथम संस्करण 28 मार्च 2011, पृष्ठ 313.
2. जैन धर्म और दर्शन- मुनिश्री प्रमाण सागरजी महाराज, संस्करण 1996 पृष्ठ 55
3. जैन तत्त्व प्रकाश- पूज्य श्री पूजाश्री अमोलक ऋषिजी महाराज दसवीं आवृत्ति मार्च 1982 पृष्ठ 518
4. वही
5. तित्थयर वर्ष 26, अंक 2, मई 2002 पृष्ठ 74
6. युवादृष्टि जनवरी 2013 वर्ष 41 अंक 01 पृष्ठ - 6

आचार्य महाप्रज्ञ के अनुसार उपनिषदों में कहा गया– **'उदार चरितानां तु वसुधैव कुटुम्बकम्'** जो उदार चरित्र वाला है, पूरी पृथ्वी उसका कुटुम्ब है।[1]

ईशान महेश भगवान महावीर विश्व मंच शीर्षक के अन्तर्गत भगवान महावीर के भिन्न भिन्न वचनों को सूत्रों को प्रकट करते है जिसका निचोड़ एकमात्र अहिंसा है– **'परस्परोपग्रहो जीवनाम्**।[2]' **'जीओ और जीने दो**[3]' **'अहिंसा परमोधर्म**[4]' जैसे तुम हो वैसे ही सभी है अतः किसी को मत सताओ[5] आदि अपूर्व जीवन महा सूत्रों को प्राथमिकता देने की वर्तमान आवश्यकता पर ईशान महेश ने अधिक बल दिया हैं। विभिन्न ग्रन्थों में अहिंसा भावना को प्राधान्य देने वाले कुछ सूत्र यथा-- **'अहिंसा प्रतिष्ठायां तत्सान्निधौ वैरत्यागः[6] योगदर्शन 2।35** अर्थात् अहिंसा की प्रतिष्ठा (पूर्ण स्थिति) हो जाने पर उसके सान्निध्य में सब प्राणी अपना वैर भाव छोड़ देते है।'

'अहिंसयैव भूतानां कार्य श्रेयोऽनुशासनम्।[7]'मनुस्मृति 2।159 .

तात्पर्य-अहिंसा की भावना से अनुप्राणित होकर ही प्राणियों पर अनुशासन करना चाहिए। **अहिंसा परमोधर्मः सर्वप्राणमृतां वरः।[8] महाभारत 12।13** समस्त प्राणियों के लिए अहिंसा सर्वोत्कृष्ट धर्म है।

एसा सा अहिंसा भगवई भीयाण वीव सरणं, तस्सथावर सव्वभूयखेमकरी[9] अर्थात् यह अहिंसा भगवती है जो भयाकुल प्राणियों के लिए विशेष शरणदात्री है, त्रस–स्थावर सभी प्राणियो का कुशलक्षेम-मंगल करने वाली है।

---

1. युवादृष्टि जनवरी 2013 वर्ष 41 अंक 01, पृष्ठ 6
2. युवादृष्टि अप्रैल 2012 वर्ष 40 अंक 4, पृष्ठ 25
3. वही
4. वही
5. वही
6. अहिंसा दर्शन, राष्ट्रसंत उपाध्याय अमरमुनिजी चतुर्थ संस्करण 2012, पृष्ठ प्रस्तावना व अनुक्रमाणिका के मध्य।
7. वही
8. वही
9. अहिंसा-दर्शन, राष्ट्रसन्त उपाध्याय अमरमुनिजी चतुर्थ संस्करण 2012 पृष्ठ

महापुरुषों के इन कथनों पर **'आस्ता सुव सासता**[1]' अर्थात् आस्था रखने से शाश्वत सुखों की प्राप्ति होती है, यह न्याय सटीक प्रतीत होता हैं। अहिंसा की मूल्यवत्ता को स्थूल रूपेण स्पष्ट करने में उपर्युक्त कथन सक्षम है।

अहिंसा का विवेचन रहित आलेखन का उद्देश्य मात्र इतना ही है कि अहिंसा तत्त्व की मूल में छिपी उसकी महत्ता, आवश्यकता अथवा स्थान के प्रतिपादन किये जाने समझने व पालन करने के मूल आशय की ओर आकर्षित करना। अहिंसा के गर्भ में छिपा आशय इसको आगत-बीती, आज-चल रही और अनागत आनेवाली समस्याओं के समाधान में अग्रिम और अन्तिम स्थान प्रदान करता है। मनुष्य के मनुष्यत्व को अर्थ प्रदान करने वाली व पहचान देने वाली भी अहिंसा ही हैं।

हिंसा का साम्राज्य-एक त्रासदी :

अहिंसा का विवेचन उत्तरोत्तर सूक्ष्म व दृढ़ पकड़ पाने से पूर्व एक पटाक्षेप-सिक्के के दो पहलू होते हैं। इस आधार पर अहिंसा के विपक्ष अर्थात् 'हिंसा' पर प्रकाश डालना अहिंसा को विवेचन रहित स्वंयं सिद्ध करना ही है। एतदर्थ हिंसा का प्रतिपादन हिंसा क्या है अथवा किसे कहते है? इसके पूर्व कौन और किसकी करता है? यह जान लेने से हिंसा को मूल से जाना जा सकता है।

जैन दर्शन में दो तत्त्व माने गये हैं। 1. जीव, 2. अजीव। जैन दर्शन में जीव तत्त्व किसे कहते है? जीवों के लक्षण, भेद, स्वरूप आदि को जानना जीव तत्त्व है[2] ठीक इसके विपरीत अजीव तत्त्व होता है। जीव-जीव की जीव या अजीव के निमित्त से हिंसा करता है। हिंसा घटित होने में जीव तत्त्व प्रधान है।

प्रश्न है कि जीव किसे कहते है? मुनि सुमन कुमार के '**जीवतीति जीव**' अथवा जीवनाज्जीवः के अनुसार जो जीता रहता है वह जीव है[3] '**जीविती-प्राणान् धारयतीति जीव**' जो जीवित है अर्थात् जो प्राणों को धारण

---

1. जैन-तत्त्व-प्रकाश-पूज्यश्री अमोलक ऋषिजी महाराज, दसवीं आवृत्ति मार्च 1982 पृष्ठ 518
2. नवतत्त्व प्रश्नोत्तरी-साध्वी डॉ. नीलांजनाश्री द्वितीय संस्करण सन् 2010 पृष्ठ 1
3. तत्त्व चिन्तामणि–मुनि सुमनकुमार संस्करण दूसरा 29 फरवरी 1996 गुरुवार पृष्ठ 8

करता है वह जीव कहलाता है।[1] पंडित हीरालाल दूगड़ जैन चिरंतनाचार्य के गुजराती पुस्तक का हिन्दी में भाषान्तर करते हुए कहते है– **'द्रव्य-भाव प्राणैजीवतीति जीव'** जो द्रव्य और भाव प्राणों के आधार पर जीता है वह जीव है।[2] डॉ. साध्वी नीलांजना श्रीजी के अनुसार–जो शुभाशुभ कर्मों का कर्त्ता-हर्ता तथा भोक्ता हो जो सुख-दुःख रूप ज्ञान के उपयोग वाला हो, जो चैतन्य-लक्षण से युक्त हो, जो प्राणों को धारण करता हो वह जीव कहलाता है।[3] जीव का आशय, परिभाषाओं से स्पष्ट करने के पश्चात् समस्त जीवों के दो भेद किये जा रहे है। (1) संसारी जीव (2) मुक्त जीव।[4]

अहिंसा की परम सीमा के द्योतक मुक्त जीव होने से हिंसा के प्रतिपादन में हमें केवल संसारी जीवों को जानना है। समस्त संसारी जीव राशि के कुल 563 भेद[5] कहे गये है। इसका विवेचन मुनि मनीत प्रभसागरजी ऐसा बताते है–जीवों के 563 भेदों[6] में से एकेन्द्रिय जीव के 22, विकलेन्द्रिय (द्विन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चउरिन्द्रिय) के 6 और पंचेन्द्रिय के 535 भेद है। अधिक जानकारी के लिए जीव विचार प्रश्नोत्तरी पढ़े।

जीव के विपरीत लक्षण वाला अजीव है। जीव तथा अजीव ये दोनों द्रव्य सम्पूर्ण लोक में है। इन दो द्रव्यों को समझने के लिए 9 तत्त्वों को जान लेना चाहिए। तत्त्व है– 1. जीव, 2. अजीव, 3. पुण्य, 4. पाप, 5. आस्रव, 6. संवर, 7. निर्जरा, 8. बंध, 9. मोक्ष।[7]

इन नव तत्त्वों में जीव स्वरूप संवर निर्जरा व मोक्ष है अतएव इन तीन तत्त्वों को जीव तत्त्व में समाहित किया जाता है एवं पुण्य, पाप, आश्रव, बंध कर्म परिणाम रूप होने से इन्हें अजीव तत्त्व में शामिल किया जाता है। तात्पर्य दो द्रव्यों में ही नव तत्त्व समाहित है।

---

1. नवतत्त्व प्रकरण सार्थ-हिन्दी भाषांतर कर्ता-पंडित हीरालाल दूगड़ जैन आवृत्तिः पहली गुजराती लेखक चिरंतनाचार्य पृष्ठ 5
2. तत्त्व चिन्तामणि-मुनि सुमनकुमार संस्करण दूसरा 29 फरवरी 1996 गुरुवार पृष्ठ 8
3. नवतत्त्व प्रश्नोत्तरी साध्वी डॉ. नीलांजनाश्री द्वितीय संस्करण 2010 पृष्ठ 1
4. जीव विचार प्रश्नोत्तरी–मुनि भक्तिप्रभसागर द्वितीय संस्करण 2010 पृष्ठ 18
5. जीव विचार प्रश्नोत्तरी–मुनि मनितप्रभसागर द्वितीय संस्करण 2010 पृष्ठ 141.
6. वही पृष्ठ 143
7. नवतत्त्व प्रश्नोत्तरी-साध्वी डॉ. नीलांजना श्री द्वितीय संस्करण, सन् 2010, पृष्ठ 1

कर्म लिप्त जीव अपना स्वभाव, अपनी वृत्ति छोड़ मिथ्या ज्ञान के कारण अजीव तत्त्व के आकर्षण में हिंसा में प्रवृत्ति करता है जिससे निवृत्त होने के लिए अहिंसा की प्राथमिकता ही प्रधान है। संक्षेप में केवल इतना ही कि जीव, जीव या अजीव के निमित्त से जीव की हिंसा करता है। यानि हिंसा होने या करने में जीव का आधिपात्य है। यहाँ यह स्पष्ट करने की आवश्यकता है कि हिंसा क्या है व किसे कहते हैं?

सामान्यतः हिंसा यानि प्राणघात। त्रिलोक की सम्पदा से भी सभी को प्राण अधिक प्यारे है, कथन है–

आयुः क्षण लव मात्रं, न लभ्यते हेम कोटिभिः क्वापि।
तद्गच्छति सर्वमृषतः का ऽधिका हानिः?[1]

अर्थात् करोड़ों मोहरें खर्च करने पर भी क्षण या लवमात्र भी आयु प्राप्त नहीं हो सकती, अतएव प्राणघात से बढ़कर कोई हानि नहीं है। यही भाव अन्य शब्दों में **'अहिंसा-मानव के सर्वांगीण विकास की पृष्ठ भूमि'** शीर्षक के अन्तर्गत लेखिका डॉ. लता बोथरा ने अपने विचार व्यक्त करते हुए कहा है–भगवान महावीर ने पाप के अठारह स्थानों में हिंसा को प्रथम स्थान दिया है[2] इतना ही नहीं वरन् स्पष्टीकरण करते हुए आगे चलकर लेखिका कहती है–संवेदना का अभाव ही हिंसा को जनम देता हैं।[3] पूज्य श्री अमोलक ऋषि जी महाराज व डॉ. लता बोथरा के कथनों का निष्कर्ष यही है कि हिंसा के एवज में की जाने वाली कोई क्षति पूर्ति या हर्जाना, आपूर्ति करने में अक्षम होने से पाप की कोटि में हिंसा का प्रथम स्थान है। ऐसा पाप संवेदनहीन व्यक्ति ही कर सकता हैं। अतः हिंसा शब्द को स्पष्ट करने हेतु अर्थ के साथ-साथ कुछ परिभाषाएँ– 'हिंसा' शब्द हिंसा, धातु से बना है, जिसका अंर्थ है वध करना, घायल करना, आताप पहुँचाना, दुःख या पीड़ा देना।[4]

गौतम महर्षि ने गौतम कुलक के 52वें जीवन सूत्र में स्पष्ट बता दिया है।

1. जैन तत्त्व प्रकाश ले. श्री अमोलक ऋषिजी म. सा. दसवीं आवृत्ति मार्च 1982, पृष्ठ 518
2. तित्थयर, अक्टूबर - 2012, पृष्ठ - 227
3. तित्थयर, वर्ष 36, अंक 07, अक्टूबर 2012, पृष्ठ 228
4. तित्थयर अंक 2 मई 2002 पृष्ठ 79

न प्राणीहिंसा परमं अकज्जं।

प्राणीहिंसा से बढ़कर संसार में कोई अकार्य नहीं है।[1]

शीलांकाचार्य ने सूत्र कृतांग वृत्ति में कहा है–

पंचेन्द्रियाणि त्रिविधं बलं च, उच्छ्वास-निःश्वासमयान्यदायुः।
प्राणा दशैते भगवद् भिरूक्तास, तेषां वियोजी करणं तु हिंसा।।

अर्थात् पाँच इन्द्रियां, तीन बल (मन, वचन और काया), श्वासोच्छ्वास एवं आयु ये दस प्राण। तीर्थंकर भगवान ने कहे हैं। उनका वियोग करना, उनसे प्राणी को रहित कर देना ही हिंसा हैं।[2] तत्त्वार्थ सूत्र में आचार्य उमास्वाति ने कहा "प्रमत्त योगात् प्राण व्यपरोपणं हिंसा" प्रमत्त योग से प्राणों का व्यपरोपण करना हिंसा है।[3]

आचारांग सूत्र में लिखा है कि "प्रमाद और काम भोगों में जो आसक्ति होती है वहीं हिंसा है।"[4]

पं. आशाधर जी कहते है– "जहाँ प्रमाद है, वहीं हिंसा है और जहाँ प्रमाद नहीं है, वहाँ हिंसा भी नही है।"[5]

आचार्य अमृतचन्द्र- "वस्तुतः अन्तर्मन में रागादि का होना ही हिंसा है।"[6] अमृतचन्द्राचार्य के शब्दों में–

यत्खलुकषाययोगात् प्राणानां द्रव्य भावरुपाणां व्यपरोपणस्य करणं सुनिश्चिता भवति सा हिंसा। अर्थात्-कषाय के योग से अर्थात् प्रादुर्भाव से द्रव्य और भाव रूप प्राणों का व्यपरोपण करना हिंसा है।[7]

प्रश्नव्याकरण सूत्र के प्रथम अध्ययन के तृतीय गाथा में हिंसा को जीव वध नहीं कहकर प्राणवध कहा है–

प्राणाः दशैते भगवद् भिरूक्ता, तेषां वियोगी करणं तुं हिंसा।।

---

1. जिनेन्दु प्रधान संपादक जिनेन्दु कुमार, 25 अप्रैल, 2002 पृष्ठ 406
2. वही पृष्ठ 406-407
3. तत्वार्थ सूत्र, हिंदी अनुवादक मुनि श्री अमोलकचंदजी अखिलेश, पृष्ठ-63, प्रकाशक-सन्मति ज्ञानपीठ आगरा।
4. तित्थयर, अक्टूबर - 2012, पृष्ठ - 222 अंक - 7
5. अहिंसा दर्शन, राष्ट्र सन्त उपाध्याय, अमरमुनि चतुर्थ संस्करण 2012 पृष्ठ 261
6. वही पृष्ठ 219
7. जैन धर्म दर्शन और भारतीय धर्म दर्शन सप्तम पत्र संस्करण 2011 पृष्ठ 49

अर्थात् दस प्रकार के प्राणों में से किसी भी प्राण का वियोजन (नाश) करना हिंसा हैं।[1]

गाँधीजी का कहना था कि कुविचार मात्र हिंसा है।[2]

नाथुराम प्रेमी के विश्लेषण का तात्पर्य बताते कहा है कि–अपने और पर के द्रव्य एवं भाव प्राण का घात हिंसा है।[3]

हिंसा की उपर्युक्त परिभाषाओं की बिसात पर बिछे शब्दजाल की विविधता कितनी ही क्यों न हो गर्भितार्थ वा सापेक्षता मात्र यही है कि अन्य से अपेक्षित तथा अनपेक्षित प्राणी के लिए जो है उसका निर्वाह व उपेक्षा दूसरों के संदर्भ में रखना उसकी प्राथमिकता हो। इसी सापेक्षता में अहिंसा की जड़े गहरी समाई हुई है। इसी क्रम में विभिन्न पहलुओं का विवेचन हिंसा के संदर्भ में और भी आवश्यक हैं।

हिंसा घटित होने में हिंसक हिंस्य, हिंसा तथा हिंसा का फल यह तथ्य जुड़े होते हैं। लेखक महापंडित आशाधर इन चार तत्त्वों को परिभाषित करते हुए कहते है–

प्रमत्तो हिंसको हिंस्या द्रव्यभाव स्वभावकाः।
प्राणास्तद्विच्छिदा हिंसा तत्फलं पापसञ्चय, ।।21।।

अर्थात्–प्रमादी हिंसक कहलाता है। द्रव्य और भावरूप प्राण हिंस्य कहलाते है, तथा इन द्रव्य भावरूप प्राणों का वियोग करना हिंसा और खोटे कर्मो का बंध हिंसा का फल कहलाता है।[4]

हिंसक कौन? इसके उत्तर में आचार्य हीराचन्द्र जी महाराज ने अपने प्रवचन में बताया–प्रभु महावीर ने आठ प्रकार के हिंसक कहे हैं।

अनुमंता, विशासिता, निंदता, क्रय विक्रयी।
संस्कर्ता, चोपहर्ता च, खादकश्चेति घातकाः।।[5]

---

1. सचित्र प्रश्नव्याकरण सूत्र–प्रवर्त्तक श्री अमरमुनि प्रथम आवृत्ति ईसवीं सन् 2008 मई पृष्ठ -2
2. जैन धर्म दर्शन और भारतीय धर्म दर्शन सप्तम पत्र संस्करण 2011 पृष्ठ 48
3. वही पृष्ठ 49
4. सागारधर्मामृतम्, प्रणेता महापण्डित आशाधर, संस्करण प्रथम सन् 1989-90, पृष्ठ 202
5. हीरा-प्रवचन-पीयूष भाग-4, संस्करण द्वितीय-2009 पृष्ठ-39, आशुलेखन संपादन-नवरतन मेहता

इसी तरह से हिंसक के आठ प्रकार आचार्य जिन चन्द्र सुरिजी ने मनुस्मृति में लिखे होने की बात कहीं हैं। मनुस्मृति में लिखा है–

मारने की सलाह देने वाला, मरे प्राणियों के शरीर को काटने वाला, मारने वाला, मोल लेने वाला, बेचने वाला, पकाने वाला, परोसने वाला और खाने वाला–ये सब के सब पापी और दुष्ट हैं।[1]

उपर्युक्त वर्णित आठ हिंसकों का दोहा तथा तत्पश्चात् दिया गया मनुस्मृति का कथन इन दोनों का संलग्न विवेचन आचार्य पूज्य श्री अमोलक ऋषिजी महाराज ने भी दिया है।[2]

इससे भी आगे चलकर यही कथन 551 मनुस्मृति में होने का उल्लेख लेखिका डॉ. लता बोथरा ने तित्थयर पत्रिका में किया है।[3]

संक्षेप में आठ हिंसकों का विवेचन प्रस्तुत है–

1. **अनुमंता–** मारने की सलाह देने वाला एक ऐसा व्यक्ति स्वयं कुछ ना करते हुए भी करवाने में योगदान देने वाला होने से हिंसक हैं। उसकी सलाह पर अमल करते हुए प्राणी मारा गया हो या बच गया हो, यहाँ तक की अमल किया गया हो या ना किया गया हो उसकी ओर से भावों द्वारा हिंसा पूर्णतः हो चुकी हैं। अतः वह हिंसक है। जैसे न्यायाधीश द्वारा फांसी की सजा मुकर्रर किये जाने के पश्चात् राष्ट्रपति द्वारा माफी मिलने पर भी न्यायाधीश हिंसक है। जैसे–पेस्ट कंट्रोल की व्यवस्था।

2. **विशसिता–** मरे प्राणियों के शरीर को काटने वाला मरा हो या किसी और के द्वारा मारा गया हो यानि प्राण घात हो चुका है। उसके बावजूद भी उसके शरीर को काटना क्रूरता वा मनोविकार का द्योतक होने से हिंसा ही हैं। प्रश्न उठता है–शवविच्छेद (पोस्टमार्टम) अथवा डॉ. बनने हेतु शवों की चीरफाड़ कर शरीर विज्ञान को प्राप्त करना भी क्या हिंसा है? हाँ है। प्रमाणों की तारतम्यता चाहे कितनी भी न्यूनाधिक हो द्रव्य हिंसा तो घटित हो ही रही है।

---

1. अहिंसा विवेक, आचार्य जिनचन्द्र सूरिजी, कमला पॉकेट बाक्स पृष्ठ - 119
2. जैन तत्त्व प्रकाश, पू. श्री अमोलक ऋषिजी महाराज दसवीं आवृत्ति मार्च 1982, पृष्ठ - 624
3. तित्थयर, अंक 06, अक्टूबर 2012, पृष्ठ 225

3. **निहंता–** मारने वाला। प्रत्यक्ष प्राणों को हरण करने वाला तो हिंसक होता ही है। शल्यक्रिया के दौरान रोगी के प्राण डॉ. के हाथों चले जाना या उद्देश्य पूर्वक प्राणों का हनन करना जैसे भागते अपराधी को मार (एनकाउन्टर) डालना, फांसी के दण्ड प्राप्त अपराधी को फांसी पर लटकाना आदि हिंसकवृत्ति में प्रमाणों की तरतमता कम अधिक होने पर भी हिंसा ही हैं।

4-5. **क्रय विक्रयी–** मोल लेने वाला व बेचने वाला। भोक्ता व विक्रेता को प्राणियों के निर्जीव शरीर की इन्द्रिय पोषण, धनोपार्जन साज़-सज्जा आदि हेतु उपयोगिता है तभी किसी और के द्वारा हिंसा की जाती है। हिंसा को प्रोत्साहन देने में दोनों का योगदान सिद्ध हैं। अतएव वह हिंसक कहलाते हैं। जैसे मच्छीमार द्वारा होने वाली हिंसा में यह दोनों प्रोत्साहक हैं।

6. **संस्कर्त्ता–** पकानेवाला। स्व पर अथवा उभय पक्ष की रसनेन्द्रिय की तृप्ति धनोपार्जन आदि के लिए यह तत्पर होते है। तभी अन्य के द्वारा हिंसा की जाती है। दूसरों के मन में विकृति उत्पन्न करने की क्षमता इनमें होती है। अतएव यह हिंसक हैं।

7. परोसने वाला। किसी भी प्रकार के हिंसको द्वारा की जाने वाली किसी भी हिंसा में इन्हें आपत्ति नहीं होती। परोसने में तत्पर व्यक्ति परोक्षतः सभी प्रकार की हिंसा का अनुमोदन करता हुआ हिंसक कहलाता हैं। जैसे बैरा (वेटर)

8. **खादकश्चेति–** खानेवाला। सभी प्रकार के हिंसकों का प्रोत्साहक तो होता ही है, इतना ही नहीं वरन् इनमें से कितनों की मति यहाँ तक भ्रष्ट होती है कि उसने कोई भी हिंसा की नहीं वह किसी प्रकार से दोषी भी नहीं, क्योंकि सब कुछ घटित हो जाने के पश्चात् उचित मात्रा का उसने सेवन किया अतः वह किसी भी कोण से हिंसक हो ही नहीं सकता। यानि '**चोर ऊपर से सीना जोर।**'

हिंसक की कोटि वा श्रेणी में गिने जाने वाले इन 8 प्रकारों को मद्देनजर रखने का एक सुन्दर उदाहरण चायना का है। बौद्ध मंदिरों के बाहर जो होटल वहाँ होते हैं उसमें मांसाहार तो दूर प्याज, लहसुन

आदि का भी प्रयोग नहीं किया जाता। स्थावर काय की हिंसा के प्रति सजगता।

आठ प्रकारों में अतः किसी भी एक प्रकार का हिंसक अन्य हिंसकों का सहभागी प्रोत्साहक अथवा परोक्षतः हिंसा का उत्तरदायी होने से प्रकारान्तर से वह हिंसक भी है। अतः सभी प्रकार के हिंसक पापी व दुष्ट होने की मनुस्मृति के कथन की प्रचीति यथार्थ साबित होती है।

महापंडित आशाधर जी ने प्रमादी को हिंसक की संज्ञा ही है। ओघनिर्युक्ति में आचार्य भद्रबाहु ने 754वीं गाथा में 'हिंसओं इयरो' शब्द प्रयोग, जो आत्मा अविवेकी है जागृत एवं सावधान नहीं है प्रमादयुक्त है; वह हिंसक है[1] इस अर्थ से किया हैं।

श्री रिषभदास रांका निरन्तर अप्रमाद का विश्लेषण करते हुए प्रमाद को मृत्यु और अप्रमाद को जीवन कहा गया है।[2] ऐसा स्पष्ट करते हैं।

सूत्रकृतांग सूत्र में भगवान महावीर ने कहा है–जहाँ प्रमाद है, भूल है और अयतना है–वहीं पाप कर्म हैं।[3]

आखिरकार यह प्रमाद है क्या? प्रमाद शब्द का प्रयोग जागृति का अभाव, आत्मविस्मरण, शुभ कार्यों के प्रति अश्रद्धा वा अनादर, अधिकार अथवा अनाधिकार के विषय में असावधानी इन आशयों में किया जाता है।

जैन शास्त्रों में आस्त्रवों के बताये गये पाँच कारणों में से तीसरा कारण प्रमाद है। पंच संग्रह प्राकृत 1/15 में प्रमाद के पंद्रह भेद होने का उल्लेख मुनि श्री प्रमाण सागरजी महाराज ने किया है।[4] प्रमाद के पाँच इन्द्रिय चार विकथा, चार कषाय तथा प्रणय और निद्रा ये पन्द्रह भेद हैं। पाँच इन्द्रिय क्रमशः स्पर्शेन्द्रिय, रसनेन्द्रिय, प्राणेन्द्रिय, चक्षुरिन्द्रिय तथा श्रोतेन्द्रिय हैं।

---

1. अहिंसा दर्शन राष्ट्रसंत उपाध्याय अमरमुनि चतुर्थ संस्करण 2012, पृष्ठ 232
2. महावीर व्यक्तित्व, उपदेश और आचार-मार्ग, संस्करण पहला जनवरी 1974, पृष्ठ - 63
3. अहिंसा दर्शन राष्ट्रसंत उपाध्याय अमरमुनि चतुर्थ संस्करण 2012, पृष्ठ 259
4. जैन धर्म और दर्शन, मुनि श्री प्रमाण सागर जी महाराज संस्करण 1996 पृष्ठ 107

पाँच इन्द्रियों के 23 विषय[1] व उनके कुल 240 विकार[2] हैं।

इन्द्रिय किसे कहते है? जीव के चिन्ह को अथवा जिनकी उपस्थिति में आत्मा की पहचान व अभिव्यक्ति हो उसे इन्द्रिय कहते है।[3] शरीर के जिन अवयवों से शब्द, रूप, गंध, रस स्पर्श आदि का ज्ञान होता है उसे इन्द्रिय कहते हैं।[4]

इन्द्रियों के विषय किसे कहते है? पाँच इन्द्रियों के माध्यम से आत्मा के अनुभव में आनेवाले पुद्गल के स्वरूप को इन्द्रियों का विषय कहते है।[5]

विकार किसे कहते है? इन्द्रिय विषयों के प्रति राग द्वेष का प्रादुर्भाव ही इन्द्रिय विकार कहलाता है। अथवा ग्रहण किये गये विषयों को अच्छा या बुरा मानकर राग द्वेष करना विकार कहलाता है।[6]

इन्द्रिय विषय व विकार की परिभाषाएँ प्रमाद के संदर्भ को उजागर करने हेतु कुछ अधिक विस्तार की अपेक्षा रखती है। यथा–

1. **श्रोतेन्द्रिय**–के तीन विषय (1) जीव शब्द–व्यक्ति वा पशु पक्षियों के शब्द (2) अजीव शब्द–दिवार गिरने का शब्द तथा (3) मिश्र शब्द–वाद्य बजाते हुए गायन करना, जीव अजीव का मिश्र शब्द यह तीनों अच्छे बुरे दोनों प्रकार के होते हैं। अतएव तीनों को शुभ-अशुभ से गुणा करने पर छः होते हैं। इन छहों में राग-द्वेष बना रहने से इससे गुणा करने पर यह बारह होते है अतः श्रोतेन्द्रिय की तीन विषय व बारह विकार होते है। शास्त्रानुसार इस इन्द्रिय के वश होकर हिरन प्राण गंवाते हैं।

2. **चक्षुरिन्द्रिय**–के पाँच विषय (वर्ण) यथा कृष्ण, हरित, रक्त, पीत व श्वेत। इन पाँचों वर्णों में सजीव अजीव व मिश्र वस्तु होने से गुणा करने पर पन्द्रह भेद, कमी शुभ कमी अशुभ वर्ण होने से तीस भेद इनको राग-द्वेष से गुणा करने पर साठ विकार चक्षुरिन्द्रिय के होते है। इस इन्द्रिय के वश में होकर पतंगा प्राण गंवाता है।

---

1. नवतत्त्व प्रश्नोत्तरी, साध्वी डॉ. नीलांजनाश्री, आवृत्ति द्वितीय 2010, पृष्ठ 11
2. आगम पच्चीस बोल, डॉ. साध्वी सरोज श्री वर्ष 2000 (1999) पृष्ठ 80-81
3. नवतत्त्व प्रश्नोत्तरी, साध्वी डॉ नीलांजनाश्री, पृष्ठ 12
4. आगम पच्चीस बोल, डॉ. साध्वी सरोजश्री, पृष्ठ–39
5. नवतत्त्व प्रश्नोत्तरी, साध्वी डॉ. नीलांजनाश्री पृष्ठ 15
6. आगम पच्चीस बोल, डॉ. साध्वी सरोजश्रीं, पृष्ठ–80

3. **घ्राणेन्द्रिय**– के दो विषय– सुरभि गंध व दुरभि गंध। इन्हें सचित अचित व मिश्र से गुणित करने पर छः व राग द्वेष से गुणित करने पर बारह विकार बनते है। सांप, भंवरा इस इन्द्रिय विषय व विकारों से प्राण गंवाते हैं।

4. **रसनेन्द्रिय**–के पाँच विषय–कटु, मिष्ट, तीखा, खारा व कसैला। इन्हें सचित, अचित मिश्र पदार्थ से गुणित करने पर पन्द्रह, शुभ अशुभ होने से तीस, राग-द्वेष से गुणित करने पर साठ विकार रसनेन्द्रिय के होते है। मछली के साथ रसनेन्द्रिय का उदाहरण दृष्टिगोचर हैं।

5. **स्पर्शेन्द्रिय**–के आठ विषय-गुरु लघु, शीत, उष्ण, रूक्ष, स्निग्ध, कोमल व कठोर। इन आठ स्पर्शो को सचित, अचित, मिश्र से गुणित करने पर चौबीस व इन्हें शुभ-अशुभ से गुणित करने पर अड़तालिस व राग द्वेष से गुणित करने पर छियानवे विकार स्पर्शेन्द्रिय के होते है हाथी -जंगली भैसा इस इन्द्रिय विकार के उदाहरण है।

कुल दो सौ चालीस विकारों के घटित होने में इन्द्रियाँ कारणीभूत है, अतएव इन्द्रियों पर काबू पाना अति आवश्यक है। उसके उपयार्थ कतिपय समाधान प्रस्तुत है।

इन्द्रियों के बारे में कहा जाता है– **'एक धापी तो चार भूखी, एक भूखी तो चार धापी।'** एक रसनेन्द्रिय के तृप्त होने पर शेष चार इन्द्रियां अपने विषय-विकारों में तीव्रता से उद्यत होती है। तथापि इसी एक रसनेन्द्रिय को भूखा रखा जाय तो बाकी चार इन्द्रियाँ विषय-विकारों के प्रति उदासीनता धारण करती है।

तप आवश्यक क्यों? इस प्रश्न का उत्तर उपर्युक्त विवेचन में अनायास ही मिलता है लेकिन फिर भी रसनेन्द्रिय का प्रश्न जहाँ का तहाँ रह जाता है। एतदर्थ इन्द्रियों पर विजय पाने की दो विधियों का उल्लेख आचार्य जिनचन्द्र सूरिजी ने किया है। यथा– 1. इन्द्रिय संयम, तथा 2. इन्द्रिय निग्रह। यह दोनों पूर्णतः पाँच इन्द्रियों के प्रमाद को दूर करने में सक्षम व उपकारी है। संयम नित्य व निग्रह प्रासंगिक है।

इन्द्रिय संयम का अर्थ–अनाशक्ति से इन्द्रियों के मूलभूत आवश्यकताओं की प्रमाणोपेत पूर्ति।

इन्द्रिय निग्रह का अर्थ–निर्धारित किये गये काल, प्रमाणादि के अतिरिक्त की पूर्ति का अभाव।

पाँच इन्द्रियों के विषय भोगों में प्राणी सतत फंसता ही चला जा रहा है। विकारों में आसक्ति कम होने के बनिस्बत वृद्धिंगत ही हो रही है। मानों सारा संसार मोह रूपी मदिरा में डूबा बेभान हो रहा है। उम्र ढ़लने पर भी इच्छाओं की तृष्णा बढ़ती ही चली जा रही है। कहा भी है–

इच्छा हु आगास समा अणंतिया

इच्छाएँ आकाश के समान अनंत है, इनकी जैसे-जैसे पूर्ति होती जाती है, वैसे-वैसे इनकी वृद्धि भी होती है। उत्तराध्यन सूत्र में कहा है-

जहा लाहो तहा लोहो,
लाहा लोहो पवड्ढई।[1] —उत्तराध्ययनसूत्र

अर्थात् ज्यों-ज्यों लाभ होता जाता है, त्यों-त्यों लोभ बढ़ता जाता है। लोभ की कहीं सीमा नहीं है। एतदर्थ यह प्राणी को पीड़ा ही पहुँचा सकती है। पीड़ा मुक्ति में यह बाधक है। कहा है—

कामे पत्थेमाणा अकामाजंति दुग्गइं।[2] —उत्तराध्ययन सूत्र।

अर्थात् कामभोग की अभिलाषा रखने वाला, कामभोग का सेवन किये बिना ही मरकर नरक गति-दुर्गति में जाता है। पाँच इन्द्रियों के निमित्त से किया प्रमाद प्राणी को जीर्ण कर देता है, किन्तु स्वयं जीर्ण नहीं होता। कवि भर्तृहरि ने कहा है[3]–

भोगा न भुक्ता वयमेव भुक्ताः।
तपो न तप्तं वयमेव तप्ताः।
कालो न यातो वयमेव याताः।
तृष्णा न जीर्णा वयमेव जीर्णाः।।

अर्थात् हमने भोग नहीं भोगे बल्कि भोगों ने ही हमें भोग लिया है। हमने तप तो तपा नहीं, फिर भी दुःख रूपी ताप से मन संतप्त हो गया। शरीर दुर्बल हो गया। लोग कहते है, समय बीत गया पर समय नहीं बीता, हम स्वयं बीत गये। हम जीर्ण हो गये पर तृष्णा जीर्ण नहीं हुई।

(क्रमशः)

1. जैन तत्त्व प्रकाश, लेखक–पूज्य श्री अमोलक ऋषिजी म. सा., पृष्ठ – 608
2. वही पृष्ठ - 607
3. जिनवाणी, प्रकाशक सम्यग्ज्ञान प्रचारक मण्डल, प्रधान संपादत डॉ. धर्मचन्द जैन, दिसम्बर-2000, अंक-12, पृष्ठ-5

सोने के कंगन

श्री केवल मुनि

मुनियों का तो जीवन ही परोपकार के लिए होता है। अपना और पराया आत्मकल्याण ही तो एक मात्र ध्येय है उनका। धर्म की धुरा का वहन करते हुए प्राणियों को धर्म मार्ग पर लगाने में, उनका जीवन सफल करने में, उन्हें मनुष्य जन्म की सार्थकता दिखाई देती है।

इतने में ही मैं बाहर से आ गया। मेरी ओर किसी का ध्यान नहीं था। किसी पुरुष को देखकर मेरा माथा ठनका। मैंने देखा कि मेरी सभी स्त्रियाँ प्रसन्न मुख उसकी ओर देख रही थी। इस दृश्य से मुझे क्रोध आ गया। मैंने सोचा इस साधु को पाँच लकड़ियाँ मारकर घर से बाहर निकाल दूँ। मैं आगे बढ़ा किन्तु एकाएक विचार आया सुनूं तो सही ये मेरे विरुद्ध क्या षड्यन्त्र रच रहे हैं। मैं बाहर ही छिपकर उनकी बातें सुनने लगा।

मुनिराज कह रहे थे–

–भाग्यवान सुन्दरियों! हिंसा बहुत बड़ा पाप है। इसके परिणामस्वरूप ही मनुष्य लूला, लंगड़ा, अपाहिज और अपंग होता है। जीव भव-भव में दुःखी होता है और जगह-जगह उसे तिरस्कार और अपमान मिलता है। हिंसक प्राणी दुर्गतियों में ही भ्रमण करता है। वह तिर्यंच और नरक गति के दुःखों को पाता है। क्रूर परिणामी जीव अपने पिता की भी हिंसा करने में संकोच नहीं करता। ऐसे निंद्य कर्म में प्रवृत्त हो जाता है और फिर नरक गति के दुख भोगता है–जैसे शत्रुञ्जय राजा और उसका पुत्र शूरकुमार।

स्त्रियों ने जिज्ञासा प्रकट की–गुरुदेव! कौन था राजा शत्रुञ्जय? उसके पुत्र शूर ने क्या किया? हमें विस्तार से बताइये?

गुरुदेव कहने लगे–

विजयपुर नगर में राजा शत्रुञ्जय राज्य करता था। उसके दो पुत्र थे–बड़ा शूर और छोटा चन्द्र! राजा ने बड़े पुत्र शूर को युवराज पद दे दिया और छोटे को कुछ भी नहीं। छोटे पुत्र ने समझा कि पिता का प्रेम मुझ पर कम है। अतः वह चल दिया और स्थान-स्थान पर अनेक कौतुक देखता हुआ रत्नपुर नगर आ पहुँचा। नगर के बाहर ही उद्यान में सुदर्शन नामक मुनि देशना दे रहे थे। चन्द्र कुमार भी नमन करके वहाँ बैठ गया। मुनिदेव ने अहिंसा व्रत के लाभ बताए तो चन्द्रकुमार ने प्रभावित होकर अहिंसाणुव्रत ले लिया। उसने नियम लिया– 'संग्राम आदि कार्य के अतिरिक्त मैं किसी त्रस जीव को नहीं मारूंगा।' मुनि से स्थूल प्राणातिपातविरमण व्रत स्वीकार करने के पश्चात् वह नगर में प्रवेश कर गया।

रत्नपुर नगर का राजा जयसेन चन्द्रकुमार का मामा था। कुमार अपने मामा की सेवा करने लगा। एक दिन राजा जयसेन ने कहा– कुमार! हमारा कुम्भ नाम का सामन्त बहुत प्रचण्ड है। उसे गुप्त रीति से हटा दो–उसके प्राण हरण कर लो।

चन्द्रकुमार ने उत्तर दिया–महाराज ! मैंने तो संग्राम आदि के अलावा हिंसा न करने कां नियम लिया है। मैं उसकी हत्या प्रच्छन्न रूप से नहीं कर सकता।

यह सुनकर राजा जयसेन सन्तुष्ट हुआ। उसने उसे अपना अंगरक्षक बना लिया। राज्य के प्रत्येक कार्य में उसकी राय लेने लगा। क्योंकि अहिंसक प्राणी से सभी निर्भय रहते हैं।

एक बार चन्द्रकुमार ने कुम्भ सामंत को संग्राम में पराजित कर दिया। उसकी शक्ति को भंग करके सामंत को बन्दी रूप में जयराजा के सम्मुख हाजिर कर दिया। जय राजा उसके पराक्रम से प्रसन्न हुआ और उसे पुत्र के समान ही मानने लगा।

इधर चन्द्रकुमार का बड़ा भाई शूरकुमार युवराज पद से भी संतुष्ट नहीं था। मानव की प्रकृति है कि उसे जितनी सुविधाएं और पद

मिलते जाते हैं उसकी आकांक्षाएं उतनी ही अधिक बढ़ती जाती हैं। वह सदा असन्तुष्ट ही रहता है। शूर भी स्वतन्त्र राजा होना चाहता था। अपनी इस दुरभिलाषा को पूर्ण करने के लिए एक रात उसने सोते हुए पिता शत्रुंजय को मौत के घाट उतारने के लिए तलवार का प्रहार कर दिया। वार कुछ ओछा पड़ा और रानी ने जोर-जोर से चीखकर शोर मचा दिया। परिणामस्वरूप पहरेदारों ने आकर युवराज शूर को बन्दी बना लिया। रात्रि के अंधकार में तो कुछ स्पष्ट दिखायी नहीं पड़ा किन्तु प्रातः न्याय के लिए बन्दी को लाते समय पहरेदारों ने देखा कि यह तो युवराज शूरकुमार है। कुमार को उन्होंने वहीं रोका और एक पहरेदार ने आकर महाराज से निवेदन किया–महाराज! आपकी हत्या का प्रयास करने वाला और कोई नहीं युवराज शूरकुमार हैं। अब आपकी जैसा आज्ञा हो, वैसा ही किया जाय।

राजा शत्रुंजय युवराज के कुकृत्य से बहुत दुःखी हुआ। यदि यह बात जनता में फैल जाती है तो राज-परिवार का लोक में अपवाद होगा। बहुत सोच-विचार कर राजा ने निर्णय दिया–देश-निकाले का।

राजाज्ञा का पालन हुआ और कुमार को सिपाहियों ने नगर के बाहर निकाल दिया।

युवराज शूरकुमार की तलवार से राजा के शरीर पर गहरा घाव लगा किन्तु उससे भी गहरा घाव उसके हृदय पर किया उसके कुकृत्य ने। बड़े पुत्र से धोखा खाकर याद आई छोटे पुत्र चन्द्रकुमार की। राजा ने उसको सम्पूर्ण घटना का उल्लेख करते हुए पत्र लिखवाया। पिता का पत्र पाते ही चन्द्रकुमार विजयपुर आया और पिता की सेवा करने लगा किन्तु घाव ठीक नहीं हुआ और कुछ दिन बाद राजा बड़े पुत्र के प्रति द्वेषपूर्ण परिणामों से मरकर एक वन में हाथी हुआ।

(क्रमशः)

JAIN BHAWAN PUBLICATIONS

P-25, Kalakar Street, Kolkata - 700 007, Phone: 2268 2655

English :

1. Bhagavati-sutra-Text edited with English translation by K. C. Lalwani in 4 volumes:
   Vol - 1 (satakas 1- 2) Price : Rs. 150.00
   Vol - 2 (satakas 3- 6) 150.00
   Vol - 3 (satakas 7- 8) 150.00
   Vol - 4 (satakas 9- 11) ISBN : 978-81-922334-0-6 150.00
2. James Burges - The Temples of Satrunjaya. Jain Bhawan. Kolkata ; 1977. pp. x+82 with 45 plates Price : Rs. 100.00
   (It is the glorification of the sacred mountain Satrunjaya.)
3. P. C. Samsukha - Essence of Jainism Price : Rs. 15.00
   ISBN : 978-81-922334-4-4
4. Ganesh Lalwani - Thus Sayeth Our Lord, Price : Rs. 50.00
   ISBN : 978-81-922334-7-5
5. Verses from Cidananda
   Translated by Ganesh Lalwani Price : Rs. 15.00
6. Ganesh Lalwani - Jainthology Price : Rs. 100.00
   ISBN : 978-81-922334-2-0
7. Lalwani and S. R. Banerjee-
   Weber's Sacred Literature of the Jains Price : Rs. 100.00
   ISBN : 978-81-922334-3-7
8. Prof. S. R. Banerjee
   Jainism in Different States of India Price : Rs. 100.00
   ISBN : 978-81-922334-5-1
9. Prof. S. R. Banerjee
   Introducing Jainism ISBN : 978-81-922334-6-8 Price : Rs. 30.00
10. Smt. Lata Bothra- The Harmony Within Price : Rs. 100.00
11. Smt. Lata Bothra- From Vardhamana- to Mahavira Price : Rs. 100.00
12. Smt. Lata Bothra- An Image of- Antiquity Price : Rs. 100.00

Hindi :

1. Ganesh Lalwani - Atimukta (2nd edn) ISBN : 978-81-922334-1-3
   Translated by Shrimati Rajkumari Begani Price : Rs. 40.00
2. Ganesh Lalwani - Sraman Samskriti Ki Kavita, Translated by Shrimati Rajkumari Begani Price : Rs. 20.00
3. Ganesh Lalwani - Nilanjana, Translated by Shrimati Rajkumari Begani Price : Rs. 30.00
4. Ganesh Lalwani - Chandan-Murti
   Translated by Shrimati Rajkumari Begani Price : Rs. 50.00
5. Ganesh Lalwani-Vardhaman Mahavira Price : Rs. 60.00

6. Ganesh Lalwani-Barsat ki Ek Raat, Price : Rs. 45.00
7. Ganesh Lalwani -- Panchdasi. Price : Rs. 100.00
8. Rajkumari Begani-Yado ke Aine me. Price : Rs. 30.00
9. Dr. Lata Bothra - Bhagavan Mahavira Aur Prajatantra Price : Rs. 15.00
10. Dr. Lata Bothra - Sanskriti Ka Adi Shrote, Jain Dharm Price : Rs. 24.00
11. Prof. S.R. Banerjee - Prakrit Vyakarana Praveshika Price : Rs. 20.00
12. Dr. Lata Bothra - Adinath Risabdev Aur Asthapad Price : Rs. 250.00
ISBN : 978-81-922334-8-2
13. Dr. Lata Bothra - Astapad Yatra Price : Rs. 50.00
14. Dr. Lata Bothra - Aatm Darsan Price : Rs. 50.00
15. Dr. Lata Bothra - Varanbhumi Bengal
ISBN : 978-81-922334-9-9 Price : Rs. 50.00
16. Dr. Lata Bothra - Tatva Bodh Price : Rs.

Bengali :

1. Ganesh Lalwani-Atimukta, Price : Rs. 40.00
2. Ganesh Lalwani-Sraman Sanskriti ki Kavita - Price : Rs. 20.00
3. Puran Chand Shymsukha-Bhagavan Mahavir O Jaina Dharma. Price : Rs. 15.00
4. Prof. Satya Ranjan Banerjee Prasnottare Jaina-Dharma Price : Rs. 20.00
5. Dr. Jagatram Bhattacharya Das Baikalik Sutra Price : Rs. 25.00
6. Prof. Satya Ranjan Banerjee Mahavir Kathamrita Price : Rs. 20.00
7. Sri Yudhishthir Majhi Sarak Sanskriti O Puruliar Purakirti Price : Rs. 20.00

Some Other Publications :

1. Dr. Lata Bothra - Vardhamana Kaise Bane Mahavir Price : Rs. 15.00
2. Dr. Lata Bothra - Kesar Kyari Me Mahakta Jain Darshan Price : Rs. 10.00
3. Dr. Lata Bothra - Bharat Me Jain Dharma Price : Rs. 100.00
4. Acharya Nanesh - Samata Darshan Aur Vyavhar (Bengali) Price : Rs.
5. Shri Suyesh Muniji - Jain Dharma Aur Shasnavali (Bengali) Price : Rs. 50.00
6. K.C.Lalwani - Sraman Bhagwan Mahavira Price : Rs. 25.00

इसके अलावा जैन धर्म से सम्बन्धित अन्य तीन पत्रिकाएँ :

अंग्रेजी त्रैमासिक पत्रिका	वार्षिक	500.00
ISSN 0021 - 4043	(आजीवन)	5000.00
हिन्दी मासिक पत्रिका	वार्षिक	500.00
ISSN 2277 - 7865	(आजीवन)	5000.00
बंगला मासिक पत्रिका	वार्षिक	200.00
ISSN : 0975 - 8550	(आजीवन)	2000.00

Creators of Prestigious Interiors
Established 1970

Creativity is a Modern Religion

Nahar

Architects, Interiors, Consultants

5B, Indian Mirror Street, Kolkata-700 013
Phone : 2227-5240/45, Fax : 22276356
Email Id : info@nahardecor.com

Vol XXXIX No.01
25th April 2015

TITTHAYARA

Postal Reg. No. KOL.RMS / 70/2013-15
R.N.I. 30181/77